ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

भारतीय कला में बुद्ध के व्यक्तित्व व विचारों का चित्रण

जगदीश प्रसाद मीणा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान

सारांश

भारतीय कला का इतिहास बहुत पुराना है । जब हम भारत के विभिन्न धर्मों की बात करते हैं तो भारतीय कलाओं पर चर्चा करना भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि कलाओं ने विभिन्न धर्मों के प्रचार– प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय कलाएं धर्म की संगिनी रही है, क्योंकि यह कहना बहुत मुश्किल है कि धर्म पहले आया या कलाएं पहले आई। लेकिन इतना तो कहना लाजिम है कि दोनों ने एक दूसरे को आगे बढ़ाने के लिए आपसी सहयोग किया और उसी का परिणाम है की बौद्ध धर्म जिस चरमोत्कर्ष तक पहुंचा, उसमें महत्वपूर्ण भूमिका कलाओं की रही है। बौद्ध धर्म के प्रसार में चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, काव्यकला और स्थापत्यकला इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बौद्ध धर्म के इतिहास को समझने के लिए भारतीय कलाओं को समझना और उनको आत्मसात करने की आवश्यकता है, क्योंकि कलाओं के आधार पर हम हमारे भारतीय इतिहास को जान सकते हैं। भगवान बुद्ध और उनके बौद्ध धर्म की महत्ता को समझने के लिए प्रत्येक भारतीय को अपने देश की कलाओं का ज्ञान होना परम आवश्यक है। कलाओं ने हमारे नीरस सामाजिक जीवन में सृजनशीलता, आध्यात्मिकता, सौंदर्यात्मकता और आनंद के रस से पूरित करने का काम किया है, अतः सारांश में कहूं तो बिना कलाओं के किसी धर्म और संस्कृति की उत्पत्ति बिल्कुल असंभव है । बौद्ध अनुयायियों ने बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में कलाओं को आधार बनाया और साथ में कलाओं को भी आगे बढ़ाया, जिसको अजंता, शुंग, कुषाण व गुप्तकाल की चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला के उदाहरणों में देखा जा सकता है ।

मुख्य शब्द : भारतीय कला, मूर्तिकला, संगीतकला, काव्यकला और स्थापत्यकला

प्रस्तावना

भारत में कला और धर्म में से कौन पहले आया इसका निर्णय करना कठिन है। परन्तु दोनों का आगमन साथ–साथ माना जा सकता है। धर्म मर्यादा का मापदण्ड हैं व कला सौन्दर्य और रूप को लेकर सामने उपस्थित होती हैं। आरम्भ से ही प्रतीक, स्तूप, मंन्दिर, प्रतिभाओं का यथाकाल विकास हुआ, उसी के साथ चित्रकारी, संगीत, नृत्य व साहित्य का सृजन हुआ। धर्म ने कला को गौरव प्रदान किया। धार्मिक भावना के साथ कला में विकास तथा परिवर्तन हुए। कला ने भी धर्म को अपना सौन्दर्य तथा अभिव्यक्ति का साधन माना। इस तरह धर्म तथा कला में पारस्परिक सहयोग की भावना काम करती रही है। कला धर्म की मर्यादा से सदा सीमित नहीं रही। वह राजा, धनी, दरिद्र, मूर्ख तथा विद्वान के लिए प्रिय रही है। जिन युगों में धर्म जन–जीवन का केन्द्र हरा, इसने कलात्मक अभिव्यक्तियों के लिए प्रबल प्रेरणा दी। राजशक्ति के कारण सदियों के अथक परिश्रम से कलाकारों ने गुफाए, स्तूप तथा मन्दिरों आदि का निर्माण किया, जिस कारण कला ने आध्यात्मिक भावों को ग्रहण किया और गौरव तथा अमर–जीवन उसे प्राप्त हुआ। बुद्ध के त्याग, वैराग्य, ज्ञान, निर्वाण आदि अनुभूतियों को भारतीय कला में संचारित किया गया जो आज तक उदाहरण द्वारा जन–जीवन में उद्धात भावनाओं को उपस्थित करती है।[1]

कला का मूलाधार सौन्दर्य की सृष्टि में परम सत्य की खोज करना, जो मानव को सतत् आनन्द की तरफ उन्मुख करती हुई परमानन्द का आत्म साक्षात्कार कराती है। कला के मुख्य प्रभागों उपयोगी और ललित कलाएँ जैसे मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, काव्य कला एवं संगीतकला का परम उद्देश्य मानवता को सुख शान्ति प्रदान करना है, जो पूर्णतया धर्म पर आधारित है और धर्म सत्य को उद्घाटित करके मानव में परम सत्य का बोध कराता है। सदाचार, विनय, आनन्द, सुख, शान्ति धर्म के ही प्रतीक कहलाते हैं।[2]

कला और धर्म के सम्बन्ध में मुख्य रूप से यह कहा गया है कि कला और धर्म का उदय एक साथ हुआ है और दोनों साथ–साथ विकसित हुए हैं। धर्म का सर्वोच्च लक्ष्य मानव कल्याण है, अतः कला को धर्म का आदेश मानना चाहिए और धर्म की सेवा करनी चाहिए, साथ ही धर्म के विरूद्ध कुछ भी अंकित नहीं करना चाहिए, क्योकि भारतीय कलाओं का जन्म ही धर्म के साथ हुआ है और हर धर्म ने कला के माध्यम से ही अपनी धार्मिक मान्यताओं को जनता तक पहुंचाया है। इसी प्रकार भारतीय चित्रकला तथा शिल्प का लगभग तीन–चार हजार वर्षों से धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः भारतीय चित्रकला में बौद्ध धर्म की धार्मिक भावनाएं पूर्ण रूप से समा गई और चित्रकला को धार्मिक महत्व के कारण ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का साधन माना जाता है एवं चित्रकला तथा अन्य कलाओं को परम–आनन्द का साधन माना गया है।[3]

गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म

गौतम बुद्ध (सिद्धार्थ) महावीर के समकालीन थे। परम्परा के आधार पर कहा जाता है कि उनका जन्म 563 ई.पू. में शाक्य नामक क्षत्रिय कुल में कपिलवस्तु के निकट नेपाल तराई में अवस्थित लुम्बिनी में हुआ था। कपिलवस्तु की पहचान बस्ती जिले में पिपरहना से ही गई हैं। प्रतीत होता है कि गौतम के पिता शुद्धोदन कपिलवस्तु के निर्वाचित राजा और गणतान्त्रिक शाक्यों के प्रधान थे। उनकी माता कोसल राजवंश की कन्या थी। बचपन से ही गौतम का ध्यान आध्यात्मिक चिंतन की ओर था। शीघ्र ही उनका विवाह करा दिया गया, पर दापंत्य जीवन में उनका मन नहीं रमा। वे लोगो के सांसारिक दुख देख–देखकर द्रवित हो जाते और ऐसे दुःखों के निवारण का उपाय सोचने लगते। 29 वर्ष की उम्र में गौतम घर से निकल पड़े। सात वर्षो तक भटकने के बाद 35 वर्ष की उम्र में बोध गया में एक पीपल के वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। तबसे वे बुद्ध अर्थात प्रज्ञावान कहलाने लगे।

गौतक बुद्ध ने अपने ज्ञान का प्रथम प्रवचन वाराणसी के सारनाथ नामक स्थान में किया। उन्होंने लम्बी–लम्बी यात्रा कर–कर के अपना धर्म सन्देश दूर–दूर तक पहुचाया। वह शरीर से खूब तगड़े थे। इसलिए वे एक दिन में 20 से 30 किलोमीटर तक पैदल चल लेते थे। वे लगातार 40 साल तक उपदेश देते, चिन्तन–मनन करते घूमते और भटकते रहें। केवल बरसात में ही एक स्थान पर टिके रहते थे। इस लम्बी अवधि में उनका ब्राह्मणों सहित बहुत से प्रतिद्वंद्वी कट्टर पंथियों से मुकाबला हुआ। पर वे शास्त्रार्थ में सभी को पराजित करते गए। उनके धर्म प्रचार के कार्यो में ऊँच नीच अमीर–गरीब और स्त्री–पुरूष के बीच कोई भेदभाव नहीं रहता था। एक परम्परा के अनुसार गौतम बुद्ध 80 वर्ष की उम्र में 483 ई. पू. में कुशीनगर नामक स्थान में स्वर्गवासी हुए। इस स्थान की पहचान पूर्व उत्तर प्रदेश क देवरिया जिले के कसिया नामक गांव से की जाती है।

बुद्ध के सिद्धान्त

बुद्ध बड़े व्यावहारिक सुधारक थे। उन्होंने अपने समय की वास्तविकताओं को खुली आँखों से देखा। वे उन निरर्थक वाद–विवादों में नहीं उलझे जो उनके समय में आत्मा (जीव) और परमात्मा (ब्रह्म) के बारे में जोरों से चल रहे थे। उन्होंने अपने को सासांरिक समस्याओं में लगाया। उन्होंने कहा कि ससांर दुःखमय है। और लोग केवल काम (इच्छा, लालसा) के कारण दुःख पाते है। यदि काम अर्थात लालसा पर विजय पाई जाए तो निर्वाण प्राप्त हो जाएगा, जिसका अर्थ है कि जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल जाएगी।

गौतम बुद्ध के दुख की निवृत्ति के लिए अष्टांगित मार्ग ईसा पूर्व तीसरी सदी के आसपास के एक ग्रन्थ में बुद्ध का बताया हुआ कहा गया है। ये आठ साधन है– 1. सम्यक दृष्टि, 2.सम्यक संकल्प, 3. सम्यक् वाक्, 4. सम्यक् कर्मान्त्, 5. सम्यक आजीव, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक समृति, 8. सम्यक समाधि। यदि कोई व्यक्ति इन आठ मार्गों का अनुसरण करे तो उसे पुरोहितों के फेरे में नहीं पडना पडेगा और व अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। उनकी शिक्षा है कि मनुष्य को न अत्यधिक विलास करना चाहिए न अत्यधिक संयम ही, क्योकि गौतम बुद्ध मध्यम मार्ग के प्रशंसक थें।

बुद्ध ने भी अपने अनुयायियों के लिए आचार–नियम (विनय) निर्धारित किए। इस आचार–संहिता के मुख्य नियम है– 1. पराये धन का लोभ नहीं करना 2. हिंसा नहीं करना,3. नशे का सेवन न करना, 4. झूठ नहीं बोलना और 5. दुराचार से दूर रहना। सामाजिक आचरण के ये नियम सामान्य रूप से प्रायः सभी धर्मो में निर्धारित है।[4]

भारतीय कला में बौद्ध कला की शुरूआत

भारतीय कला तथा धर्म का सम्बन्ध ही कला की प्रवृत्तियाँ, रीति परम्परा एवं वृद्धि का मूल कारण है। धर्म ने कला को सर्वप्रथम प्रभाविता किया, क्योकि भारतीय कला सर्वदा धर्म की सहचरी रही है और वैदिक कार्मकाण्ड को मिटाने के लिए बौद्ध तथा जैन मतो का उदय हुआ। बालक, युवा तथा वृद्ध समान रूप से बौद्ध संघ में प्रवेश पाते थे और भिक्षु का जीवन निर्वाह करते रहे। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित शिक्षा एक आवश्यक कार्यक्रम हो गया। इस कारण भिक्षुओं के निवास के लिए विहार तथा प्रवचन अथवा पूजा के लिए चैत्य का निर्माण होने लगा। इस प्रवृत्ति ने भारतीय कला को प्रभावित किया तथा सामाजिक एवं धार्मिक आवश्यकता ने भारतीय कला में नवीनता पैदा की। कलाकारों को प्रोत्साहन मिला और उन लोगों ने सुन्दर चैत्यों तथा विहारों का निर्माण किया। ईसा से शताब्दियों पूर्व यह कार्य (बुद्ध के निर्वाण के बाद) सम्पन्न होने लगे थे।

बुद्ध के जीवन की एक घटना से भी वास्तुकला में नवीनता आई। "महापरिनिर्वाण–सूत्र" में बुद्ध तथा आनन्द के बीच वार्तालाप का सन्दर्भ आता है। आनन्द ने तथागत से पूछा था कि–निर्वाण के पश्चात् आप के शरीर (शव जलाने के बाद राख) का क्या होगा। बुद्ध ने उत्तर दिया कि–चार मार्गों के मुहाने पर शरीर के ऊपर स्तूप बनाया जाए।

आनन्द – कथं मयं भन्ते तथागतस्स सरीरे परिपज्जामति।
बुद्ध– चातुम्महापथे रज्जो चक्कवतिस्स थूयंकरोति एवं
चातुमहापथे तथा गतस्स थूयो कातब्बो।।

जिस प्रकार महापुरूष की राख पर स्मारक बनाया जाता है, उसी प्रकार बुद्ध के शरीर पर भी स्तूप बनाया गया। बौद्ध ग्रंन्थ के इस कथन का निर्वाह बुद्ध के अनुयायियों ने किया। कुशीनगर के निर्वाण के पश्चात् उनके भस्म को आठ भागों में विभक्त कर दिया गया और विभिन्न स्थानों पर स्तूप बनाए गए। इस साहित्यक वर्जन के आधार पर साँची के तोरण के एक पट्टी पर आठ हाथियों के सिर पर एक छोटा सन्दूक दिखलाया गया है। जिस पर छत्र भी दृष्टिगोचर होता है। इससे प्रकट होता है कि उन सन्दूकों में बुद्ध के शरीर (राख) का कुछ भाग रखा था। कहने का तात्पर्य यह है कि इस आधार पर अशोक ने भी 84000 स्तूपों का निमार्ण किया और उसने पूजा का क्रम आरम्भ किया। अशोक के सारे स्तूप में मूल भस्म था या नहीं, पर धर्मराजिका स्तूप (सारनाथ) के नष्ट किये जाने पर स्तूप के मध्य भाग से प्रस्तर की एक गोलाकार डिबिया मिली थी। जिसमें राख मौजूद था। काशीराज चेतसिंह की आज्ञा से राजकों नदीं में प्रवाहित कर दिया गया। डिबिया कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[5]

भारत में बौद्धधर्म के अनुयायियों में जो वर्ग व्यापारियों और धनिकों का था, उन्होने अनेक कलापूर्ण भव्य स्तूपों एवं विहारों का निर्माण कराया। जिसके उदाहरण हमें पूरे भारतवर्ष में प्राप्त होते है। मध्य प्रदेश के सांची और भरहुत दक्षिण में अमरावती और नागार्जुनकोंडा तथा पश्चिम में कार्ले और भज के चैत्यों एवं स्तूपों को इस प्रसंग से जोड़ा जा सकता हैं।[6]

भारतीय कला में आशोक द्वारा स्तूप की परिपाटी नें जीवन डाल दिया। मौर्य सम्राट ने समतल भूमि पर स्तूप का निर्माण कराया। किन्तु शुंग काल में पहाडों में अनेक चैत्य खोदे गए। सह्याद्रि पर्वतमाला के सभी गुफाओं में स्तूप का आकार मिलता हैं। स्तूप पवित्र भावना तथा पूजा के मूल आधार बन गए। इस कारण विकारपूर्ण संसार के पवित्र स्तूप को पृथक करने के लिए शुंगकाल में वेदिकाए तैयार की गई जो भारतीय कला की अत्यन्त उत्तम सुन्दर तथा आकर्षक नमूने हैं। बोधगया, भरहुत तथा अमरावती की वेदिकाए भारतीय कला में अद्वितीय स्थान रखती हैं। साँची का तोरण भी अपना सानी नहीं रखता। इन सभी का निर्माण धार्मिक प्रवृतियों तथा बौद्ध परम्परा को लेकर हुआ था। यहा तो सर्व विदित है कि इन वेदिकाओं तथा तोरणों का सम्बन्ध हीनयान मत से है। शुंगकालीन कला में बुद्ध प्रतिमा का अभाव हैं तथा वह प्रधानतः प्रतीकात्मक हैं। बुद्ध के जीवन के प्रधान चार घटनाओं को (जन्म, ज्ञान, प्रथम प्रवचन तथा निर्वाण) क्रमशः हाथी, पीपल वृक्ष, चक्र तथा स्तूप द्वारा प्रदर्शित किया गया हैं। बुद्ध के जीवन के कथानको (जातक कथाए) का भी प्रदर्शन मिलता है। बुद्ध को प्रतीकात्मक रूप में पूजा जाता था। तथा कलाकार अपनी गुफा को सुन्दता के लिए चित्रित करते थे।[7]

सम्राट अशोक ने स्तूपों के निर्माण के साथ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित सिद्धान्तो को शिला लेखों (चित्र संख्या–01) व स्तम्भों के माध्यम से प्रसारित किया। सम्राट अशोक द्वारा बनवाए गए लगभग सत्तरह स्तभों का पता चला हैं, ये स्तम्भ सारनाथ, सांची, चंपारन के लौरियों नन्दनगढ़, रामपुरवा, कौशाम्बी, इलाहाबाद, मुजफ्फरपुर के बखीरा ग्राम, सम्मिन देई तथा निगलीवा ग्राम (नेपाल) बुद्धगया , पटना, फर्रूखाबाद आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। ये स्तम्भ चुनार के लाल पत्थर के बने हुए है, जो लगभग 35 से 40 फुट ऊँचाई के है। इनका दो भागों में निर्माण किया है– 1. समूचा गोल लाट, 2. परगहा।[8]

डॉ. मोती चन्द्र ने "बौद्व धर्म और चित्रकला" शीर्षक नामक लेख में यह लिखा है कि अशोककालीन स्तम्भशीर्षों, वेदिमासूजियो और स्तूपो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सम्राट अशोक ने बौद्व धर्म के प्रसार मे भारतीय कला को माध्यम के रूप मे स्वीकार कर लिया था।[9]

मौर्य काल के बाद का समय एक ऐसा समय था जब मूर्ति निर्माण के क्षेत्र में बहुत काम हुआ। भारहुत, सांची, बौध गया, मथुरा, अमरावती, गांधार कलात्मक गतिविधियों के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए थे। मथुरा(चित्र संख्या–02, 03) और गान्धार शैली (चित्र संख्या–04, 05) कुषाण काल (50 ई. पूर्व से 300 ई.) में खूब फली–फूलीं। मथुरा शैली को यह गौरव प्राप्त हैं कि बुद्ध की पहली मूर्ति का निर्माण इसी शैली में हुआ। मथुरा ने मूर्तियों के और भी बहुत से बढ़िया नमूने तैयार किए, जिनमें ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्म के देवताओं की मूर्तियां, यक्षों और यक्षिणियों की आदम कद मूर्तियां और राजाओं की प्रतिमाए भी शामिल है।[10]

कुषाण काल के समाप्त होने के बाद गुप्तकाल (320ई.– 600ई.) के गुप्त सम्राट अत्यधिक कला प्रेमी व साहित्य प्रेमी थे और इस काल से चित्रकला व मूर्तिकला व वास्तुकला तीनों की ही बहुमुखी उन्नति हुई और इसी कारण कला के इतिहास में इस काल को "स्वर्ण युग" के नाम से पुकारा जाता हैं। उस समय मूर्तिकार शिल्प शास्त्रों में दिये गये नियमों के आधार पर मूर्तियों का निर्माण करते थे। इस काल में अनेक बौद्ध स्तूपों, स्तम्भ, विहार एवं गुहा–मन्दिरों का निर्माण हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल अनेक बुद्ध मूर्तियां प्राप्त हुई है।

इस काल का प्रमुख धर्म बौद्ध था, परन्तु आगे चलकर जब गुप्त साम्राज्य का विस्तार हुआ तब वाकाटक वंश भी इसी में लीन हो गया। उस समय से इन वंशों का प्रभाव भी गुप्त साम्राज्य पर आया, जिसके फलस्वरूप इस काल में अनेक शैव, वैष्णव व जैन धर्म से सम्बन्धित उदाहरण भी प्राप्त होते है। गुप्तकाल की मूर्तिया प्रमुखतया मथुरा व सारनाथ केन्द्रों से प्राप्त हुई है। जिनमें शैलीगत स्पष्टता व श्रेष्ठता तुरन्त दृष्टिगोचर हो जाती हैं। गुप्तकाल तक आते–आते मथुरा शैली (चित्र संख्या–06,) अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती है। इन मूर्तियां में आत्मा का सौन्दर्य छलक रहा है। कुषाणकालीन मथुरा मूर्तियों की कमियां इस काल तक आते–आते पूर्णतया समाप्त हो जाती हैं। लगता है मानों भागवान बुद्ध स्वयं ही साक्षात खड़े हो गये हो। मथुरा के अतिरिक्त गुप्तकाल की कला का दूसरा केन्द्र सारनाथ (चित्र संख्या– 07, 08) था। जो कि प्राचीन काल से बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र भी रहा है। और यहां की मूर्तिकला की परम्परा भी उतनी ही प्राचीन भी रही है।[11]

बौद्ध धर्म का भारतीय चित्रकला के माध्यम से प्रचार–प्रसार

बौद्ध धर्म का प्रचार तूलिका की साधना के आधार पर ही अधिक हुआ, लेख या लेखनी का महत्व बाद में आया। इस धर्म की मूल परम्पराएँ चित्रात्मक हैं। जैसे–जैसे जनता में बौद्ध धर्म के प्रति जिज्ञासा बढ़ती गई, वैसे–वैसे बौद्ध श्रमणों ने भारतीय कला को धर्म प्रचार हेतु अपनाया। बौद्ध भिक्षुओं के दल दूर स्थानों में धर्म प्रचार के लिए गए। उन्होनें बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया और चित्रकला को धर्म प्रचार का माध्यम बनाया। लम्बें–लम्बे पटचित्रों को जिनमें बुद्ध की जीवनी और उपदेश अंकित रहते थे और बौद्ध साधु सुगमता से लम्बी यात्रा में मोड़कर ले जा सकते थे। इस कारण तिब्बत, चीन, तथा जापान में गौतम बुद्ध के धर्म, जीवन तथा ज्ञान का प्रसार करने के लिए भिक्षुओं के द्वारा पटचित्र बहुत अधिक प्रयोग किये गए। तिब्बत तथा नेपाल के मन्दिरों में प्राप्त थानका नामक चित्रित झण्डे पटचित्र का ही एक रूप है। पटचित्र में साधारण जनता के लिए धर्म ज्ञान सुलभ हो गया जो किसी प्रकार भी लेखन लिपी के द्वारा सुलभ और लोकप्रिय नहीं हो सकता था। भारतीय कला की सांकेतिक एवं रूपप्रधान भाषा विभिन्न जातियों के लोगों से भावों के आदान–प्रदान का एक स्वाभाविक साधन थी और उस समय अन्य प्रचार–प्रचार के साधन सम्भव नहीं थे।

भारतवर्ष का आध्यात्मिक और कलात्मक वातावरण दूसरे देशों के स्नातकों को आकर्षिक कर रहा था। ये लोग यहाँ पर भारतीय कला तथा बौद्ध साहित्य को ग्रहण करने के लिये भारत मे आते थे। पांचवी शताब्दी में फाहियान और सातवीं शताब्दी में हेनसांग भारत में पर्यटन करने और बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने आये। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से चीनी यात्री भारत आये, जिनमें से कुछ कलाकार थे जो भारतवर्ष के चित्रकारों से चित्रकला की दीक्षा ग्रहण करके पुनः स्वदेश (चीन) लौटे। भारत का दूसरे देशो से सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि भारत की चित्रकला जिसका विकास प्रथम शताब्दी में हुआ था का प्रभाव सुदूर–पूर्वी तथा उत्तरी देशों पर पड़ रहा था।[12]

बौद्ध धर्म का भारतीय कला में भित्तिचित्रण :–

भारत में बौद्ध कला की महान विरासत भित्ति चित्रों के रूप में सुरक्षित है। इन भित्ति चित्रों का विस्तार भारत में सर्वत्र मिलता हैं। इस कलात्मक धरोहर की लोक प्रियता भारत के उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त तथा मध्य एशिया के अनेक देशों तक पहुंची।

बौद्ध कला की इस महान थाती का समृद्ध केन्द्र 'अजन्ता' है। जो महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं तथा जातक कथाओं पर आधारित हैं। इन चित्रावलियों में इस कला की आरम्भिक और अन्तिम दोनों चरणों की भारतीय कला दिखाई पड़ती है। श्रीलंका में सिगिरिया की गुफाओं में भी इस कला शैली का परिपक्व रूप दिखाई पड़ता हैं। भारत में बाघ, बादामी, सित्तन्नवासल के चित्रों में अजन्ता के चित्रों की छाप है।

इस प्रकार बौद्ध कला की सर्वोत्तम चित्राकृतियाँ अजन्ता में (चित्र संख्या–09, 10) देखने को मिलती हैं, जिनकी विशेषताएं ससांर भर में प्रचलित है। विभिन्न विद्वानों ने अजन्ता की कला का अध्ययन कर उसे विश्व की कलाकृतियों के सन्दर्भ में देखा है और अनेक निष्कर्ष निकाले है। इन चित्रों का मुख्य विषय बुद्ध का वास्तविक जीवन तथा पूर्व जन्म की कथाओं (जातक) का चित्रण है।[13]

अजन्ता में आठवीं से तेरहवीं गुफा तक की छः गुफाऐं प्रारम्भिक हीनयान बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं, जिनमें बुद्ध की प्रतीकों के रूप में पूजा होती थी। इन गुफाओं को अनुमानत 200 ई. पूर्व तथा 150ई. से कुछ बाद तक 350 वर्षो के काल में निर्मित की गई। अजन्ता में इन छः गुफाओं को छोडकर शेष सभी गुफाए महायान धर्म से सम्बन्धित हैं, जिनमें भगवान बुद्ध का चित्रांकन व शिल्पाकंन (चित्र संख्या–11) मानव रूप में किया जाने लगा था।[14]

इस तरह बौद्ध धर्म के प्रसार–प्रसार में भारतीय कला की बहुत बड़ी भूमिका रही है। जो स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय कला ही एक ऐसा माध्यम था, जिसने बौद्ध धर्म को भारतवर्ष की सीमा से बाहर निकाल कर संसार भर में प्रचारित करके अनुयायी बनायें। इस प्रकार बौद्ध धर्म के साथ भारतीय कला का अटूट सम्बन्ध रहा, जिसके बिना इस धर्म का उत्थान होना असम्भव था।

चित्रफलक

चित्र 1. अशोकालीन शिलालेख, जूनागढ़

चित्र 2. बैठे हुए बुद्ध, मथुरा शैली, कुषाण काल,

चित्र 3. खड़े हुए बुद्ध, मथुरा शैली, कुषाण काल

चित्र 4. बुद्ध, गांधार शैली, कुषाण काल

चित्र 5. बुद्ध,गांधार शैली, कुषाणकालीन

चित्र 6. बुद्ध, मथुरा शैली, गुप्तकालीन

चित्र 7. बुद्ध, सारनाथ, गुप्तकालीन

चित्र 8. बुद्ध, सारनाथ, गुप्तकालीन

चित्र 9. बोधिसत्त्व बज्रपाणि, अजन्ता गुफा संख्या–1

चित्र 10. बोधिसत्त्व पदमपाणि, अजन्ता गुफा संख्या–1 सातवीं शताब्दी

चित्र 11. लेटे हुए बुद्ध मूर्ति, अजन्ता गुफा संख्या–26,

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. वासुदेव उपाध्याय – प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, 1982, पृ0– 04*
2. *प्रेमशंकर द्विवेदी – भारतीय चित्रकला के विविध आयाम, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0– 04*
3. *डॉ. अविनाश बहादूर वर्मा – भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली, 2000, पृ0– 03*
4. *रामशरण शर्मा – प्राचीन भारत, नई दिल्ली– 1999, पृ0– 104,105*
5. *डॉ. वासुदेव उपाध्याय – प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, 1982, पृ0– 06*
6. *डॉ. रीता प्रताप – भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2007, पृ0– 55*
7. *डॉ. वासुदेव उपाध्याय – प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, 1982, पृ0– 07*
8. *डॉ. मीनाक्षी कासलीवाल भारती – भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, जयपुर, 2011, पृ0– 40*
9. *डॉ. रीता प्रताप – भारतीय चित्रकला एवं मूतिकला का इतिहास, जयपुर, 2007, पृ0– 56*
10. *मक्खन लाल – प्राचीन भारत, नई दिल्ली, 2003, पृ0– 179*
11. *डॉ. मीनाक्षी कासलीवाल – भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापना कला, जयपुर, 2011, पृ0– 100,101*
12. *डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा – भारतीय चित्रकाला का इतिहास, बरेली, 2000, पृ0 44–45*
13. *डॉ. रीता प्रताप – भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2007, पृ0– 57*
14. *डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा – भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली, 2000, पृ0– 50*